मूल्य 1 रूपया

कृषक समाचार

भारत कृषक समाज का मासिक मुख पत्र

वर्ष 58 | जून, 2013 | अंक 6

सभापति का पत्र :

सामान्यतः किसी विशेष अवधि के दौरान अधिकारियों के समूह और सत्ता में कृपापात्र परामर्श परिषदों के द्वारा नीति निर्माण किया जाता है। अव्यवहारिक नीतियां इतनी कठिन होती हैं कि वर्तमान प्रशासनिक ढ़ांचे के द्वारा उनका निष्पादन नहीं किया जा सकता और परिणाम की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस कारण नीति निर्माण में बार–बार हस्तक्षेप होने से लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती। नीति निर्माण करने वाले अधिकारियों की अवधि समाप्त होने के बाद भी नीतियों का प्रभाव बाद तक पड़ता है और इनकी देख रेख का कार्य आने वाले अन्य अधिकारियों को सौंप दिया जाता है। जब कार्यक्रम असफल हो जाते हैं तो नए अधिकारी और अपने कृपापात्र लोग अन्य नामों से योजनाओं का निर्माण करते हैं ताकि पुरानी असफलताओं को बदला जा सके। किंतु वे मूल समस्याओं का समाधान नहीं कर पाते बल्कि वे इन समस्याओं के समाधान के लिए महंगे उपाय शीघ्र कियान्वित करना चाहते हैं।

उदाहरण के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम की योजना के प्रस्तावित प्राप्तकर्ताओं में से अधिकतम किसान हैं किंतु जो वे खाना चाहें उसे उगाने की दिशा में आत्मनिर्भर बनाने के स्थान पर नीति निर्माता उन्हें नकद राशि देकर या किसी अन्य प्रकार से सस्ती दर पर अनाज उपलब्ध कराने के लिए तीखी बहस करते हैं। ये उपाय तो सूखे जैसे संकट के समय में अपनाने चाहिए किंतु केवल प्रगति के लिए इसे दीर्घकालिक समाधान न बनाया जाए। किसानों को जीवन रक्षक उपायों पर रखने के स्थान पर प्रत्येक किसान परिवार को आत्मनिर्भर बनाना संभव है और महत्वपूर्ण भी। समस्याएं विकराल रूप धारण कर लेती हैं क्योंकि निर्धन और प्रभावित लोगों में से अधिकतम अनाज उत्पादन में लगे हुए हैं। दिन प्रतिदिन किसानों को केवल यही माना जाने लगा है कि वे सस्ते अनाज के आपूर्तिकार हैं।

इस क्षेत्र में नीति और मांग में कुछ अन्य भिन्नताएं भी हैं। वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में कहा कि पिछले पांच वर्ष के दौरान कृषि में 3.6 प्रतिशत से अधिक वृद्धि हुई। वास्तव में वे ये कहने से बचना चाहते थे कि पिछले वर्ष में कृषि में केवल 1.50 प्रतिशत की वृद्धि हुई। वास्तविकता यह है कि इस वृद्धि में अधिकतम भाग पशुपालन, कुक्कुट पालन और मछली पालन जैसे सहायक क्षेत्रों का था, ये क्षेत्र आजीविका सुरक्षा के लिए अधिक अनिवार्य है। किसान बाजार की मांग के अनुसार बहुत अच्छी प्रतिकिया देते हैं और उत्पादन बढ़ाते हैं। नियोजित द्वितीय हरित कांति के लिए संसाधनों का लक्ष्य सिंचित भूमि पर होगा, जबकि वर्षा आधारित कृषि क्षेत्रों में निराशा विद्यमान है और वहां पर नक्सल समस्या ने जड़ें जमा ली हैं।

– अजय वीर जाखड़

अध्यक्ष, भारत कृषक समाज

O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O

भारत में कृषि ऋण का वर्तमान रूझानः एक टिप्पणी

* आर. रामकुमार

परिचय

कृषि में निवेश का एक महत्वपूर्ण भाग ऋण की आपूर्ति है। वर्ष 1969 में वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण होने के बाद से भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में 'सामाजिक और विकसित बैंकिंग' की नीति पर भरपूर ध्यान दिया है। इसके परिणामस्वरूप, ऋण देने वाली औपचारिक संस्थाएं, मुख्य रूप से वाणिज्यिक बैंक, कृषि में निवेश के महत्वपूर्ण स्रोतों के रूप में उभरी है जिन्होंने साहूकारों और जमींदारों को किनारे पर कर दिया है। सामाजिक और विकसित बैंकिंग की नीति एक आपूर्ति आधारित नीति थी, इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण की आपूर्ति करना था और साथ ही सस्ती ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराना था।

वर्ष 1969 की सामाजिक और विकसित बैंकिंग के पश्चात् तीन पहलू प्रमुख रूप में उभरे। प्रथम, नई शाखा लाईसेंस नीति के अनुसार वाणिज्यिक बैंकों को किसी भी महानगर में या बंदरगाह क्षेत्र में एक शाखा खोलने पर ग्रामीण क्षेत्रों में जहां पर कोई बैंक न हो वहां चार शाखाएं खोलना आवश्यक था। इसके परिणामस्वरूप, वर्ष 1969 में ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकों की केवल 1443 शाखाएं थी तो वर्ष 1991 में बढ़कर 34134 ग्रामीण शाखाएं हो गई। द्वितीय, प्राथमिकता क्षेत्र को ऋण देने की नीति के अनुसार शुद्ध बैंक का ऋण आवश्यक रूप से 40 प्रतिशत था जो अर्थव्यवस्था के उन क्षेत्रों (या समाज के वर्गों) को दिया गया जिन्हें समय पर और निर्धारित लक्ष्य न होने से पर्याप्त

ऋण नहीं मिला था, उन्हें दिया गया। ये क्षेत्र थे जैसे कृषि और संबंधित कार्यों के लिए किसानों को ऋण (18 प्रतिशत), सूक्ष्म और लघु उद्योग, निर्धन लोगों को आवास हेतु, विद्यार्थियों को शिक्षा के लिए और अन्य कम आय वर्ग और कमजोर वर्ग के लोगों के लिए (10 प्रतिशत), तीसरा, वर्ष 1974 की भिन्न ब्याज शुद्ध योजना के अनुसार सार्वजनिक बैंकों द्वारा दिए गए अग्रिमों पर ब्याज दर सस्ती की गई थी, ताकि चुने हुए निम्न आय वर्ग के लोगों को उत्पादकता और लाभकारी कार्यों में लगाया जा सके। ब्याज की भिन्न दर समान रूप से 4 प्रतिशत वार्षिक नियत की गई थी यथा बैंक दर से 2 प्रतिशत कम।

अर्थशास्त्रियों में इस मुद्दे पर कोई विवाद नहीं है कि भारत में कृषि के विकास पर वर्ष 1969 के बाद ऋण की गति में वृद्धि हुई है। सार्वजनिक बैंकों से बढ़ाए गए ऋण की मात्रा से छोटे और मझोले किसानों को महंगी नई तकनीक और कृषि पद्धतियां अपनाने में सहायता मिली है जो कि हरित कांति की रणनीति का एक भाग थी।

फिर भी, 1980 के दशक के आरंभ में वित्तीय उदारीकरण के प्रस्तावकों ने सामाजिक और विकसित बैंकिंग नीति की आलोचना की। उपरोक्त उल्लिखित ग्रामीण ऋण विस्तार के तीनों पहलुओं पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। वित्तीय पद्धति संबंधी समिति (नरसिंघम समिति) का कहना था कि बैंकों को वाणिज्यिक आधार पर कार्य करना चाहिए और उनके कार्यों का मुख्य उद्देश्य लाभ अर्जित करना हो। इस प्रकार बैंकों को ग्रामीण शाखाएं बंद करने की अनुमति दी गई और इसे शाखा नेटवर्क के समानीकरण का नाम दिया गया। प्राथमिकता क्षेत्र के मानदंड तेजी से कम हो रहे थे। यह कहा गया कि बैंकों को ब्याज की दर लेने के लिए खुला छोड़ दिया जाए क्योंकि लागू होने वाली ब्याज दर वित्तीय दमन का कारण बन सकती है।

इसके परिणामस्वरूप वर्ष 1991 के बाद की वित्तीय उदारीकरण की अवधि सामाजिक और विकसित बैंकिंग की उपलब्धियों के विपरीत की अवधि थी। तब तक यह साबित हो चुका था कि 1990 के दशक में भारत के परिवेश से ग्रामीण क्षेत्रों को ऋण की आपूर्ति सामान्य रूप में और विशेष रूप से कृषि ऋण पर अत्यधिक प्रभाव/विघ्न पड़ा। 1990 के दशक में, (क) ग्रामीण क्षेत्रों में वाणिज्यिक बैंकों की शाखाएं बड़े पैमाने पर बंद की गई (ख) ऋण प्रावधान में अंतर्राज्यीय असमानता और बढ़ी तथा उन क्षेत्रों में बैंक ऋण का अनुपात घटा जहां पर ऐतिहासिक रूप से बैंक के कार्य विकासशील थे (ग) कृषि क्षेत्र में ऋण की वृद्धि में उल्लेखनीय गिरावट हुई (घ) छोटे और मझोले किसानों को कृषि ऋण नहीं दिया गया (ड़) औपचारिक वित्तीय पद्धति से अलग किए गए लोगों को हानि पहुंचने और प्रभावित वर्गों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई और (च) ग्रामीण ऋण देने में साहूकारों की भूमिका में उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

वर्ष 2004 में सरकार ने अपनी मंशा व्यक्त की कि 3 वर्षों में कृषि ऋण की गति को दोगुना करना है। संयुक्त प्रगतिशील संघ (यूपीए) सरकार ने जैसा वादा किया था कि

ग्रामीण भारत हेतु नई योजना तैयार करेंगे इसी का एक अभिन्न अंग ऋण गति में वृद्धि करना था। वर्ष 2004 में एक व्यापक ऋण नीति घोषित की गई जिसमें प्रत्येक वर्ष 30 प्रतिशत कृषि ऋण बढ़ाने की प्रतिबद्धता थी, प्रति शाखा 100 किसानों को वित्त देने की व्यवस्था (इस प्रकार 1 वर्ष में 50 लाख किसान), प्रत्येक वर्ष प्रति शाखा कृषि परियोजनाओं में 2 से 3 नए निवेश और ऋण राहत उपाय अपनाना जैसे कि ऋण को पुनःनिर्धारित करना, एकमुश्त समाधान और साहूकारों से लिए गए ऋण को चुकाने में वित्तीय सहायता देना। वर्ष 2004 से सरकारी क्षेत्रों में नियमित रूप से यह दावा किया गया कि कृषि में ऋण की गति तेजी से बढ़ रही है और इसने वार्षिक लक्ष्य को भी पार कर लिया है। वास्तव में सरकारी विवरणों से ऐसा आभास होता था कि कृषि ऋण की समस्या को ऋण की गति दोगुनी करके और सूक्ष्म ऋण का विस्तार करके दूर कर दिया गया है।

वर्तमान लेख 2000 के दशक में कृषि ऋण के रूझान से संबंधित है और सरकार के इस दावे की निकट से जांच करता है कि वर्ष 2004 के पश्चात कृषि ऋण की समस्या को सुलझा लिया गया है।

1990 के दशक और 2000 के दशक में कृषि ऋण की वृद्धि का रूझान

ऐतिहासिक रूप से कृषि ऋण में किसानों को सीधे दिया गया ऋण शामिल होता है जिसे कृषि में सीधा निवेश कहा गया है। कृषि को सीधे निवेश के अंतर्गत लघुकालिक ऋण या मौसमी कृषि कार्यों के लिए ऋण की गणना एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में की गई है। लघुकालिक ऋणों को कृषि में फसल ऋण कहा गया है क्योंकि ये अग्रिम किसान द्वारा उगाई गई फसल को गिरवी रखकर उस फसल के लिए दिया जाता है। फसल ऋण के अतिरिक्त सीधे निवेश में कृषि में मध्य अवधि का और दीर्घकालिक निवेश हेतु दिया गया ऋण शामिल है। कृषि वित्त के दूसरे अव्यव को अप्रत्यक्ष निवेश कहा गया है जो किसानों को सीधे नहीं दिया जाता है बल्कि उन संस्थाओं को दिया जाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन हेतु सहायता करती हैं। कृषि में प्रत्यक्ष निवेश में विशेष प्रकार से वे ऋण शामिल हैं जो उपकरणों के डीलरों को उनके कृषि उपकरणों के प्रावधानों में उनकी भूमिका के लिए और बिजली बोर्ड को किसानों को बिजली देने के लिए दिये जाते हैं।

1990 के दशक में जब भारत ने वित्तीय क्षेत्र में उदारीकरण की नीति कियान्वित की तो 1980 के दशक की तुलना में कृषि में वाणिज्यिक बैंकों के ऋण की गति बहुत धीमी थी। वर्ष 1980 और 1990 के बीच 6.8 प्रतिशत वृद्धि की वार्षिक दर थी जो वर्ष 1991 और 2001 के बीच 2.6 प्रतिशत वार्षिक तक ही सीमित रह गई। इसके अतिरिक्त 1990 के दशक में कृषि ऋण की वृद्धि दर तदनुरूपी अवधि में ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से कम थी।

1990 के दशक में कृषि की धीमी गति वर्ष 2000 के बाद उलट गई और यह बढ़ने लगी। वर्ष 2002 और 2011 में कृषि ऋण में 17.6 प्रतिशत वार्षिक की वृद्धि हुई जो 1990 के दशक में रिकॉर्ड की गई वृद्धि दर से कहीं अधिक थी। वर्ष 2000 में कृषि ऋण की वृद्धि दर की गति इतनी महत्वपूर्ण थी कि ऋण का स्तर वर्ष 2011 में इतना अधिक बढ़ गया कि यदि 1990 के दशक और 2000 के दशक के दौरान इसकी वृद्धि 1980 के दशक की वृद्धि दर से होती तो भी यह उससे अधिक था।

2000 के दशक के दौरान कृषि ऋण वृद्धि के कतिपय रूप

कृषि ऋण में वृद्धि के तीन भिन्न रूप हैं जिनका कृषि आपूर्ति में वृद्धि की सीमा निर्धारित करने और इसके साथ ही कृषि क्षेत्र में इसके वितरण में भी एक प्रमुख भूमिका है। इन रूपों को निम्नलिखित उप–वर्गों में अलग–अलग प्रकार से उल्लेख किया गया है।

अप्रत्यक्ष वित्त की भूमिका

प्रथम, 2000 के दशक में कृषि की कुल बैंक उधार में वृद्धि के महत्वपूर्ण अनुपात को कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में लेखाबद्ध किया गया था। वर्ष 2000 और 2011 के दौरान कृषि में ऋण आपूर्ति की कुल वृद्धि में से लगभग एक तिहाई भाग अप्रत्यक्ष वित्त का था।

1990 के दशक में और इसके बाद कृषि वित्त के कुल भाग में अप्रत्यक्ष वित्त में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। वर्ष 1985 और 1990 में कुल कृषि निवेश में अप्रत्यक्ष वित्त का भाग कम हुआ था; वर्ष 1990 के बाद यह भाग बढ़ना आरंभ हुआ और वर्ष 2000 में यह 15.5 प्रतिशत; वर्ष 2005 में 23.9 प्रतिशत और वर्ष 2007 में 25.5 प्रतिशत हुआ। इस प्रकार कुल कृषि वित्त में अप्रत्यक्ष वित्त का भाग 1990 के दशक में बढ़ना आरंभ हुआ था, 2000 के दशक में इसकी वृद्धि तेजी से हुई।

1990 के दशक से लेकर अब तक कृषि में प्रत्यक्ष वित्त में क्या–क्या शामिल है, इसकी परिभाषा में आरबीआई में विस्तार किया। ऐसा करने से अप्रत्यक्ष वित्त को बढ़ाने के अवसर पर भी प्रभाव पड़ा जिस कारण 1990 के दशक के मध्य से अप्रत्यक्ष वित्त की गति प्रभावित हुई। अप्रत्यक्ष वित्त की परिभाषा में किए गए मुख्य परिवर्तनों का विवरण नीचे दिया गया है :

- वर्ष 1993 तक कृषि में केवल सीधे वित्त को ही प्राथमिकता क्षेत्र के एक भाग के रूप माना जाता था जिसका कृषि और संबंधित क्षेत्रों के लिए लक्ष्य 18 प्रतिशत था। अक्तूबर 1993 से लेकर अब तक के प्राथमिकता क्षेत्र के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष वित्त दोनों को मान लिया गया।
- अक्तूबर 1993 में यह निर्धारित किया गया कि कृषि के 18 प्रतिशत के प्राथमिक क्षेत्र के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुल कृषि अग्रिमों के एक

चौथाई भाग को ही कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त माना जाएगा। किंतु कुल कृषि अग्रिमों के एक चौथाई भाग से अधिक अप्रत्यक्ष वित्त की गणना की अनुमति दी गई जब प्राथमिक क्षेत्र अग्रिमों के 40 प्रतिशत लक्ष्य की प्राप्ति करनी हो।

- मई 1994 के पश्चात से कृषि में संबंधित कार्यों; जैसे पशु चारा और कुक्कुट चारा के लिए उपकरणों के वित्तीय वितरण हेतु 5 लाख रू. तक के ऋण को कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त माना गया था। उपर की सीमा को संशोधित किया गया और अप्रैल में 15 लाख रू., अप्रैल 2002 में 25 लाख रू. और अक्तूबर 2004 में 40 लाख रू. नियत की गई।

- जून 1998 के पश्चात से टपकन सिंचाई, छिड़काव सिंचाई पद्धति और कृषि मशीनरी के डीलरों को दिए गए ऋण को कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त माना गया था। अक्तूबर 2002 के पश्चात इन डीलरों की ऋण सीमा को 10 लाख रू. से बढ़ाकर 20 लाख रू. किया गया; फिर इसे और बढ़ाकर अक्तूबर 2004 में 30 लाख रू. कर दिया गया। अप्रैल 2003 तक ग्रामीण या अर्ध–शहरी क्षेत्रों में स्थित डीलरों को दिए गए ऋणों को ही अप्रत्यक्ष वित्त के क्षेत्र में लाया गया था। किंतु अप्रैल 2003 से सभी डीलरों को इन अग्रिमों के लिए पात्र मान लिया गया था, चाहे उनको कोई भी स्थान या क्षेत्र हो।

- व्यक्तिगत किसानों को उनके कुंओं के स्टैप डाउन प्वाइंट्स के लिए लो टेंशन कनैक्शन उपलब्ध कराने पर किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति के लिए राज्य विद्युत बोर्डों को दिया गया ऋण सदैव ही कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में वर्गीकृत किया गया था। वर्ष 2001 से विशेष परियोजना कृषि के अंतर्गत पद्धति सुधार हेतु इन बोर्डों को दिए गए ऋण को कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त ही माना गया था। जुलाई 2005 से बिजली क्षेत्र में सुधार करने की दिशा में राज्य विद्युत बोर्डों के अलग होने या पुनर्गठित करने के परिणामस्वरूप बने विद्युत वितरण निगमों या कंपनियों को दिए गए ऋण भी कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त ही माने गए थे।

- अगस्त 2001 से 'कृषि क्लिनिक' और 'कृषि व्यवसाय केंद्र' के लिए वित्त जुटाने की योजना के अंतर्गत दिए गए ऋणों को कृषि को अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में माना गया।

- जुलाई 2001 के बाद से ग्रामीण और अर्धशहरी क्षेत्रों में पंप सैट लगाने के कार्यक्रम के लिए वित्त जुटाने हेतु रूरल इलैक्टिफिकेशन कॉरपोरेशन द्वारा जारी बॉंड में किए गए अंशदान को भी कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में माना गया।

- अप्रैल 2000 से कृषि को ऋण देने के लिए नॉन–बैंकिंग फॉइनेंशियल कंपनीज़ को बैंकों से दिए गए ऋण को कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में माना गया।

- नवंबर 2002 से उत्पादक क्षेत्रों में भंडारण सुविधा (भंडारागार, मार्केटयार्ड, गोदाम, सीलोज़ और शीतभंडारण) के निर्माण और संचालन हेतु दिए गए ऋण और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित शीत भंडारण एककों, जिनका उपयोग किराए पर देने या कृषि उत्पादों के भंडारण के लिए किया जाता था, के ऋण को भी कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप माना गया। किंतु मई 2004 से भंडारण एककों को दिया गया ऋण, जिनमें शीतभंडारण एकक शामिल हैं, जिनका निर्माण कृषि उत्पाद के भंडारण के लिए किया जाता था चाहे उनका स्थान कुछ भी हो, भी कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष वित्त माना गया था।
- मई 2004 के बाद से यदि कोई बैंक अपनी परिसंपत्तियां कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष वित्त के रूप में देता है तो बैंक द्वारा किए गए इस निवेश को भी कृषि क्षेत्र में अप्रत्यक्ष वित्त माना गया था।
- अप्रैल 2007 के बाद से कृषि और संबंधित कार्यों (जैसे मधुमक्खी पालन, सूअर पालन, कुक्कुट, मछली पालन और दुग्ध उत्पाद) के प्रति घरानों, भागीदारी फर्मों और संस्थाओं को कुल 1 करोड़ से अधिक दिया गया दो तिहाई ऋण भी कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त माना जाता था।
- अप्रैल 2007 के बाद से ही 10 करोड़ रू. (व्यक्तिगत, स्वयं सहायता समूह और ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी संस्थाओं को छोड़कर) तक का ऋण जो खाद्य और कृषि आधारित प्रसंसाधन एककों को दिया गया ऋण जो उनके संयंत्र और मशीनरी में निवेश किया गया हो, उसे भी कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त माना जाता था।

जैसा हमने देखा कि 1990 के दशक के अंत से कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त तेजी से बढ़ा, इस प्रकार कुल कृषि ऋण की मात्रा में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

समापन बिंदु

कृषि में ऋण आपूर्ति की वृद्धि को वर्ष 2004 के पश्चात कृषि क्षेत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक माना गया है। इस लेख में हमने इस दावे की निकट से जांच करने का प्रयास किया है जिसके लिए बैंक संबंधी सेकेंड्री डाटा उपयोग में लाया गया है।

चार निष्कर्षों का संक्षेप निम्न प्रकार से है :–

प्रथम, वर्ष 2002 से वर्ष 2011 की अवधि में वाणिज्यिक बैंकों से कृषि में ऋण की वृद्धि दर 17.6 प्रतिशत वार्षिक थी जो वर्ष 1991 और 2001 की अवधि के दौरान की वृद्धि दर से कहीं अधिक थी। किंतु, सामान्य धारणा के विपरीत कृषि में ऋण गति के बढ़ने को वर्ष 2004 में सरकार की उस घोषणा का प्रभाव नहीं कहा जा सकता जिसमें कहा

RNI No. 831/1957
पोस्टल रजि० DL (S)-01/3092/2012-14
पहले भुगतान किये बिना पोस्ट करने का लाइसेंस नं०
U(C)-92/2012-14

प्रकाशन की तिथि : 1 जून, 2013
नई दिल्ली पी.एस.ओ, नई दिल्ली,
तारीख 4 एवं 5, जून 2013

गया था कि 3 वर्ष में कृषि में ऋण की गति दोगुनी करनी थी। वास्तव में 1990 के दशक के अंत से ही गति बढ़नी आरंभ हुई।

दूसरे, 2000 के दशक में कृषि में ऋण गति प्राप्त करने की सीमा उतनी प्रभावशाली नहीं हो पाती यदि कृषि में अप्रत्यक्ष वित्त की तेजी से वृद्धि न होती। वर्ष 2002 और वर्ष 2011 के दौरान कृषि की ऋण गति में वृद्धि का लगभग एक तिहाई भाग अप्रत्यक्ष वित्त में वृद्धि होने के कारण था। यह वृद्धि अप्रत्यक्ष वित्त, जैसे उपकरणों की आपूर्ति हेतु ऋण, कृषि के लिए बिजली और ऋण आदि जैसे पारंपरिक अवयवों में वृद्धि होने से नहीं हुई है। 2000 के दशक में अप्रत्यक्ष ऋण में तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण परिभाषाओं में परिवर्तन करना था, ये परिवर्तन 1990 के दूसरे आधे दशक के दौरान देखे गए थे। इन परिभाषात्मक परिवर्तनों में प्रमुख रूप से शामिल हैं – (क) वित्त, वाणिज्यिक, निर्यात आधारित और पूंजी आधारित कृषि के नए रूपों के जुड़ने और (ख) अप्रत्यक्ष वित्त के बहुत से वर्तमान रूपों की ऋण सीमा बढ़ाना। वास्तव में इन परिभाषात्मक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप बैंकों के लिए कृषि ऋण को दोगुना करना काफी सरल हो गया था।

तीसरे, 2000 के दशक में कृषि के अप्रत्यक्ष वित्त की समग्र वृद्धि ऋणों के प्रमुख विस्तार करने से हुई जिसमें 10 करोड़ रू. से अधिक ऋण सीमा नियत की गई और विशेषकर 25 करोड़ रू. से अधिक की राशि के कारण यह संभव हो पाया।

चौथे, 2000 के दशक में जब कृषि को प्रत्यक्ष वित्त तेजी से मिलने लगा तो प्रत्यक्ष अग्रिमों के भाग में भी तेजी से वृद्धि हुई जिसके अंतर्गत वर्ष 2000 और वर्ष 2010 के दौरान 1 करोड़ रू. से अधिक की ऋण सीमा नियत की गई थी। इतने बड़े आकार के अग्रिमों में से अधिकतम अग्रिम बड़े–बड़े कृषि व्यवसाय आधारित उद्यमों को दिया गया था।

निष्कर्ष में, इस बात का कोई साक्ष्य नहीं है कि 2000 के दशक में कृषि ऋण में सुधार होने का प्रमुख लाभ छोटे और मझोले किसानों को मिला हो।

* एसोशिएट प्रोफैसर, स्कूल ऑफ डिवैलपमेंट स्टडीज., टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशियल सांइसिस, मुंबई–400088, (महाराष्ट्र)

O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O-O

भारत कृषक समाज ए–1, निजामुद्दीन वेस्ट, नई दिल्ली– 110013, फोन: 011–24359509, 65650384, ई–मेल: contact@bks.org.in, वैबसाईट: www.farmersforum.in के लिए श्री उरविन्द्र सिंह भाटिया द्वारा सम्पादित, मुद्रित व प्रकाशित तथा एवरेस्ट प्रेस, ई 49/8 ओखला इण्डस्ट्रीयल एरिया, फेस –2, नई दिल्ली –110020 द्वारा मुद्रित।